P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-VIII April-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

ग्रामीण स्त्री का सशक्तीकरण व मैत्रेयी पुष्पा का लेखन

बबीता काजल
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
चौ.ब.रा.गो. राजकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान

सारांश

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेखन कार्य आरंभ करने वाली मैत्रेयी पुष्पा किसी परिचय की मोहताज नहीं है। स्त्री संवेदना की अभिव्यक्ति, ग्रामीण पृष्ठभूमि और परम्पराओं का खंडन उनके लेखन की ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें लीक से हटकर, गैर परम्परावादी लेखन कार्य करने वाले रचनाकारों की श्रेणी में खड़ा करती हैं। बुदेलखण्ड व ब्रज प्रदेश की ग्रामीण संस्कृति को साकार करते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नम्', 'चाक', ' झूलानट', 'कही ईसुरी फाग' तक अपने जीवन के अनुभवा को कथासूत्र में पिरोया है। 'गांव' मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की ऐसी विशेषता है जो उनके द्वारा रचित लगभग समस्त कथानकों में अपनी सारी अच्छाईयों व बुराईयों के साथ मौजूद है। स्त्री के पारम्परिक आदर्श रूप का खण्डन करती भुवन, सारंग, रेशम जैसी नायिकाएं, स्त्री– शोषण की विरोधी बनकर सामाजिक परम्पराओं के प्रति अपना विरोध मुखरता से दर्ज करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने नागरिक सभ्यता की चकाचौंध में खोए हुए समकालीन लेखन को अपनी कृतियों के माध्यम से ग्रामोन्मुख बनाने का सफल प्रयास किया है। लिंग विषमता की विकटता से जकड़े समाज की जड़ता को तोड़कर उसे समरसता व सहअस्तित्व की ओर अग्रसर करना मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित कथा साहित्य का उद्देश्य है, जिसे उनकी ग्रामीण नायिकाओं ने कुशलता से साधा और पूर्ण किया है।

मुख्य शब्द : ग्रामीण, सामाजिक मान्यताएं, परिवेश, परिवर्तन, समाज, संघर्ष, सामन्ती ढांचा, शोषित, उपेक्षित, शहरीकरण, प्रतिरोध, बाजारवाद, देह विमर्श, विकास की प्रक्रिया, स्त्री विमर्श।

परिचय

'ग्रामीण स्त्री का सशक्तीकरण व मैत्रेयी पुष्पा का लेखन' शोध पत्र का उद्देश्य मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित कथा साहित्य के माध्यम से ग्रामीण स्त्री की संवेदना, साहस व संघर्ष को रेखांकित करना है। बदलते परिवेश के साथ नित नए रूप ग्रहण करते जीवन मूल्यों को मैत्रेयी पुष्पा ने विशिष्ट रूप से स्त्री संदर्भ में परिभाषित किया है।

बाजारवादी संस्कृति के परिणामस्वरूप आए अनेक परिवर्तनों के बावजूद आधी आबादी का बहुतांश उत्पीड़न और शोषण का शिकार है। इस उत्पीड़न व शोषण को लोकसंस्कृति से जोड़कर चित्रित करने के साथ साथ मैत्रेयी पुष्पा ने साहस व संघर्ष के रूप में समाधान भी प्रस्तुत किया है। स्त्री संवेदना के प्रति कथाकार की इस प्रतिबद्धता ने ही मुझे इस विषय पर शोध हेतु प्रेरित किया। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में स्त्री विमश की वर्तमान जीवन दृष्टि का विश्लेषण कर स्त्री के जीवन संघर्ष, युग और युगीन सत्य तथा रचना कौशल को रेखांकित करना इस शोध–पत्र व अध्ययन का उद्देश्य है। यह शोध पत्र नवीन और मौलिक दृष्टिकोण के साथ स्त्री विमर्श व ग्रामीण स्त्री सशक्तीकरण की दिशा में मैत्रेयी पुष्पा के उल्लेखनीय योगदान को प्रकाशित करेगा।

परिवेश ही साहित्यकार को गढ़ता है। इस दृष्टि से ग्रामीण पृष्ठभूमि पर जिस लेखिका ने कथा संसार रचा है वे निश्चित रूप से मैत्रेयी पुष्पा हैं। 'गाँव' मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में अपनी सौंधी सुगन्ध और निरे भोलेपन ही नहीं बाज़ारी दुश्चिन्ताओं की जकड़न के साथ मौजूद है। कुल मिलाकर मैत्रेयी पुष्पा की सृजनात्मकता का बुनियादी ढाँचा ग्रामीण भारत का है। बुन्देलखण्ड व ब्रज प्रदेश की ग्रामीण संस्कृति को साकार करते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नम्' से 'चाक', झूलानट, 'कही ईसुरी फाग' तक अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों के अनुभवों को कथासूत्र में पिरोया है। 'गाँव' मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की ऐसी विशेषता है जो 'विज़न' को छोड़कर उनके द्वारा रचित शेष समस्त कथानकों में अपनी सारी अच्छाईयों व बुराईयों के साथ मौजूद है। लाख अशिक्षा, अज्ञान,

अंधविश्वास के बावजूद गाँव की जड़ों से मैत्रेयी पुष्पा का गहरा जुड़ाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हलबैल, खेत–खलिहान, ढोर–बखरी, सुआटा–चन्दना कथा सब उनकी आत्मा में बसे, मन में रचे हैं। इसलिए रचनाओं के माध्यम से गाँवों के साथ उनका रागात्मक संबंध अलग–अलग शेडस के साथ नजर आता है। 'इदन्नमम्' की नायिका सामान्य महानगरीय मध्यवर्ग की औरतों से भिन्न अलग व्यक्तित्व की धनी है जो लोकजीवन से उद्धृत है। इसके पास देशज समस्याओं का देशज समाधान भी है। साधन, सुविधाविहीन होना भी उसे उसके लक्ष्य से विमुख नहीं कर पाता। 'चाक' उपन्यास में 'अतरपुर' गांव के लोकजीवन को मैत्रेयी पुष्पा असीम संवेदना के साथ प्रस्तुत करती हैं। ग्रामीण जड़ता को तोड़ने का कार्य सारंगनैनी करती है। चाक पर चढ़ा समय का पहिया घूमता है और सारंग में परिवर्तन लाता है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गाँव के बारहमासी लोक उत्सवों व राग–रंग के बीच प्रस्तुत किया गया है। इस परिवर्तन से ग्रामीण परिवेश में हलचल मच जाती है। परम्परागत सामाजिक ढाँचे के अभ्यस्त ग्रामीणों द्वारा स्त्री की ताकत को दबाने कुचलने का उपक्रम किया जाता है। सारंग के भीतर का यह परिवर्तन परिवेश के परिवर्तन का आधार बनता है। स्थिर जड़ता में आलोड़न की शुरूआत होती है और कुछ मूल्य और विश्वास दरकने लगते हैं। 'इदन्नमम्' की बऊ व मंदा में जो साहस और निडरता थी वह भविष्य के बुन्देलखण्ड का संकेत थी। 'चाक' में सारंग, रेशम, गुलकन्दी, कलावती, लौंगसिरी के भीतर भी वह सामर्थ्य है जो आज हमें गांव की आर कस्बे की स्त्रियों में दिखाई देता है। 'झूलानट' की शीलों का निर्माण करके कथाकार ने संदेश दिया है कि ग्रामीण समाज की अशिक्षित महिला भी अपनी आसपास की स्थितियों को समझकर अपने भीतर से ही ताकत बटोर कर समस्याओं से लड़ सकती है। शीलों की लड़ाई व्यक्तिगत होते हुए भी समष्टि को संदेश देती है। निराशा, हताशा ओर पलायन नहीं संघर्ष, विवेक और जीवन का चयन करना शीलों को स्वयं सिद्धा बनाता है। परित्यक्ता बनी रहकर शीलों बेचारगी को ओढ़ती नहीं बल्कि देवर बालकिशन को पति का प्यार देकर भी बछिया की रस्म का विरोध कर पति की सीमा में नहीं आने देती दूसरी तरफ सुमेर की अवमानना की शिकार होकर भी उसे 'पति के बंधन से मुक्त नहीं होने देती इस प्रकार बालकिशन व सुमेर दोनों की सम्पत्ति की अघोषित स्वामिनी होने का सुख अनुभव करती है। शिक्षा व ज्ञान जैसे अस्त्र–शस्त्रों से विहीन होकर भी इस ग्रामीण स्त्री में सम्पत्ति के प्रति गजब की सतर्कता है क्योंकि वह जानती है कि पुरुष के लिए मैत्रेयी के शब्दों में 'सत्ता के आगे सैक्स भी कुछ नहीं।''[1] सम्पत्ति के एकाधिकार के प्रति पुरुष की सजगता ही विधवा का फेरबदल कर उसी घर के दूसरे पुरुष से ब्याहने की परम्परा की कारक है जिससे घर की सम्पत्ति घर पर ही बनी रहे। इस तरह बिना किसी भावात्मक लगाव के वह स्त्री देह को हथियार की तरह इस्तेमाल करता है। यहीं ग्रामीण व शहरी स्त्री का संघर्ष कुछ भिन्नता लिए है, जहाँ गाँव की स्त्री आरपार की लड़ाई लड़ती है, वहीं शहरी स्त्री का संघर्ष कई परतों व पर्दों के पीछे ढका रहता है। गाँव की स्त्री के लिए राह अधिक कांटों भरी है क्योंकि उसके पास साधन और सुविधाओं की कमी है। मैत्रेयी पुष्पा स्पष्ट कहती हैं– ''गँवई स्त्री परिस्थिति के अनुसार अपनी राजनीति तैयार करती है क्योंकि उसकी स्थिति शहरी स्त्री के मुकाबले भिन्न और साधन सुविधा विहीन होती है। यहां हम अशिक्षा, यातायात की असुविधा, थाने और कचहरियों की दूरियों, खूँखार, सामंती समाज का घेरा और जातिगत पंचायतों को देख सकते हैं। साथ ही विवाह संस्था का थोपा हुआ शिकंजा गाँवों में अपने महत्त्व को अकाट्य बनाए हुए है। यानी कि पुरुषों की राय से हुए विवाह के फैसले, जिसमें औरत को बहू के रूप में केवल आज्ञाकारिणी होना है अपनी सेवा और सैक्स समर्पण के साथ।[2] स्त्री के इस पारम्परिक आदर्श रूप का खंडन करती भुवन, सारंग, रेशम जैसी नायिकाएँ स्त्री शोषण की विरोधी बनकर सामाजिक परम्पराओं के प्रति अपना विरोध मुखरता से दर्ज करती हैं। सत्ता की राजनीति के घिनौने खेल और बाजारवाद की दिखावटी संस्कृति से भी आज के गाँव अछूते नहीं ह। ग्रामीण समाज की पारम्परिक संस्कृति करवट ले रही है जिससे सामंती ढाँचा चरमरा रहा है, मर्यादाओं के नाम पर जटिल रही सामाजिक मान्यताओं के बंधन ढीले पड़ रहे हैं। शोषित व उपेक्षित के मुख से विरोध के स्वर सुनाई पड़ने लगे हैं और कहीं न कहीं स्त्री पुरुष के मध्य संबधं में भी बदलाव आ रहा है। जिसे उर्मिला शर्मा अपने आलेख में रेखांकित करती है– ''सामंती ग्राम संबंधों की तार बुनावट, परम्परागत देशों की टूटन, जाति व्यवस्था की जकड़न, निम्न वर्ग में जनतांत्रिक चेतना का उभार, सामाजिक न्याय की अनुगूँज एवं गाँवों के महाने पर बाज़ार की दस्तक का बड़ा ही सटीक एवं जीवन्त दस्तावेज मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास हैं।[3] 'अल्मा कबूतरी' में पढ़ाई में फिसडडी रह चुके लल्लूराजा को प्रधान पद के उम्मीदवार के रूप में देखकर ईर्ष्यावश मंसाराम जंगलिया कबूतरा का इस्तेमाल करके जो योजना बनाता है वही कथा को आगे बढ़ाने का आधार बनती है। कथा के अंत में 'अल्मा' की 'कबूतरी' से 'शास्त्री' के रूप में जो परिणति होती है वह स्त्री द्वारा सत्ता को हथिया लेने का संकेत करती है। 'चाक' का शिक्षित, विवेकी रंजीत भी प्रधान पद की लालसा में नायक से खलनायक बन जाता है व 'बेतवा बहती रही' में राजनीति के कई दांवपेंचों का ग्रामीण परिवेश में घुलामिला रूप प्रस्तुत करने के साथ मैत्रेयी पुष्पा ने ऐसे स्त्री पात्रों को गढ़ा है जो पुरूषों की राजनैतिक–सामाजिक वर्चस्ववादी मानसिकता को खंडित कर प्रतिरोध में खड़ी हो जाती हैं ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ती है। वोटों की राजनीति के कपटपूर्ण रवैये से अब गांव भी नहीं बचे हैं। दरअसल इस संदर्भ में आज का गांव ग्रामीणता और शहरीकरण के झूले में झूलता नजर आता है। राजनीतिक उठापटक, कूट चालें, प्रभावशाली द्वारा निर्बल को या प्रतिद्वन्द्वी को मुंह के बल पटकने का आत्मसंतोष, वोटरों को खुश करने की छलपूर्ण नीति, परस्पर ईर्ष्या, डाह, वैमनस्य जहां गांव को शहरी लाक्षणिकता के निकट ले जाता है वहीं पुरातन पंथी धार्मिक आस्थाएं, रीति रिवाज, रूढ़िवादी अंधविश्वास और लोकपर्व उसे ग्रामीण बनाए रखने में जुटे ह। खेरापतिन,

लौंगसिरी आदि के मुख से गाई जाने वाली लोककथाएं स्त्री उत्पीड़न का जश्न मनाने वाली लोकसंस्कृति के प्रति एक खींझ पैदा करती है वहीं इन लोककथाओं, लोकाचारों से निकलती जड़ों की महक से भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गांव मैत्रेयी की आत्मा में बसते हैं, इसलिए कागज पर उतरते हैं, कथा चाहे जन जाति समाज की हो, स्वयं के जीवन की या 'शीलों' और 'मन्दा' की। ग्रामीण परिवेश में प्रकृति भी चोली दामन की तरह साथ साथ चलती है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण व बाज़ारवाद ने प्रकृति का भरपूर दोहन किया है। उद्याग और शहर की मार से बचे हुए गांवों में आज भी प्रकृति अपने पूरे यौवन के साथ अठखेलियां करती नजर आती है, इसलिए जहां गांव है वहां प्रकृति भी सहचरी सी संग संग है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन रूप कम ही सामने आया है, अधिकांश स्थानों पर प्रकृति वर्णन किसी न किसी बैसाखी के सहारे ही खड़ा नजर आता है। मगर इस सहारें में भी उसकी अपनी पहचान है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों को स्थान दिया है जो वास्तविक जीवन के अंग है, इसलिए कथा की सहजता व स्वाभिवकता में कहीं खलल नहीं पड़ता है। हां कहीं कहीं स्त्रो पात्रों की अतिरिक्त दिलेरी अचम्भित करती है। विधवा रेशम द्वारा अपनी सास को कहा गया यह कथन इसका उदाहरण है– ''अम्मा तुम विरथा ही दांत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतों मरतों का भेद भी भूल गई तुम, बेटा के संग मैं भी मरी मान ली''[4] क्या इसे ग्रामीण स्त्री द्वारा अपनी देह को अपने अधिकार में लेने का जयघोष मान लिया जाए? यहीं नहीं अगनपाखी में मौसी भानिज के मध्य देह संबेध 'अल्मां कबूतरी' के संभोगप्रसंग, 'चाक' की सारंग का दैहिक समर्पण कई कई प्रश्न खड करते हैं। स्त्री मात्र 'देह' नहीं है, देह से इतर भी उसकी अलग महत्ता है जिसे वह समय समय पर अपनी क्षमता से सिद्ध करती रही है। दूसरी तरफ मैत्रेयी पुष्पा मानती हैं कि स्त्री अगर स्त्री है तो वह विदेह कैसे हो सकती है? स्त्री की देह ही उसे स्त्री बनाती है इस सत्य को स्वीकार करते हए देह पर विमर्श से कैसे बचा जा सकता है? हां यह बात दीगर है कि स्त्री की यौनिकता के संदर्भ में भारतीय लेखन जगत में स्पष्ट और मुखर संबोधन चौंकाता है। स्त्री की देह से लेकर उसके सपनों तक पुरूष का नियंत्रण है। अधिकांश स्त्री समाज ने अपनी सर्वहारा स्थिति को मज्जागत मान लिया है। स्त्री को विनम्रता, क्षमा, सहनशीलता के साथ मानवीय मूल्यों का प्रतीक मान लिया गया। नैतिकता का सारा दायित्व औरतों को ही वहन करना पड़ता है, इसकी जड़ पितृसत्ता है। इस पितृसत्ता को आज का विमर्श चुनौती दे रहा है इसलिए अनेक लांछन लगाकर उसके बढते कदमों पर अंकुश लगाने के प्रयास किए जा रहे है। प्रभा खेतान का कथन दृष्टव्य है– '' अधिकतर लोग स्त्री स्वतंत्रता को यौन उच्छृंखलता का ही पर्याय मान लेते हैं जबकि ऐसा नहीं है।''[5]

साहित्यिक पारदर्शिता व ईमानदारी की राह पर चलते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री उत्पीड़न व स्त्री के देह सुख दोनों का यथार्थवादी वर्णन किया है। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा रचित स्त्रियां ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ी होने के बावजूद मर्यादाओं व मापदण्डों की उपेक्षा कर अपनी नैतिकताएं आप गढ़ती हैं। दरअसल मैत्रेयी पुष्पा के लेखन के साथ समस्या स्त्री विमर्श या देह विमर्श को लेकर नहीं है। समस्या लेखन की व्याख्या करने की है। मैत्रेयी पुष्पा ने जिसे 'स्त्री स्वतंत्रता' की तरह वर्णन किया है उसे आलोचक भ्रमवश 'यौन स्वछन्दता' का नाम दे रहे हैं। मैत्रेयी पुष्पा के लेखन की विशेषता यही है कि मानसिक धरातल पर स्वावलम्बी स्त्री को वे तन के मोर्चे पर भी उन्मुक्त बनाती हैं क्योंकि उनका मानना है कि ''तन मन को अलग करके देखना आधा सच है।''[6] 'चाक' में सारंग पति से अपनी देह वापिस मांगना चाहती है। उसक उद्देश्य ना तो व्याभिचार पूर्ण व्यवहार की स्वतंत्रता प्राप्त करना है, ना ही सामाजिक विकास की प्रक्रिया को भ्रष्ट करना है। वस्तुतः यहां प्रश्न स्वाधीनता और स्वामित्व का है। स्त्री की देह ही तो है जो उसकी अपनी है, उस पर भी उसका अधिकार नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की नायिकाएं इस जड़ मिथक के विरूद्ध विद्रोह करती हैं और बदनामी पाती हैं– '' मेरा मन जिद्दी है श्रोधर कहता है जिस मर्द के साथ तेरे पिता ने विदा कर दिया उस मालिक से वापिस मांग ले अपनी देह। जीती जागती पांच इन्द्रियों के संग तो जानवर बेचे जाते हैं। उन्हीं का रस्सा पकड़ाया जाता है दूसरे के साथ। यह बात रेशम के मन में भी आई होगी, तभी तो उसने धर्म बिगाड़ लिया।''[7] गांव की सीमाओं में मर्यादा व इज्जत की दीवार इतनी कोमल होती है कि किसी स्त्री द्वारा जरा भी सीमा रेखा को लांघने का प्रयास करते ही पूरा गांव तमतमा उठता है। गांव के पुरूष ही नहीं स्त्रियाँ भी घर की इज्जत, मर्यादा की रक्षा हेतु बड़े से बड़ा रहस्य अपन भीतर दबाकर रख लेने की क्षमता और कमजोरियों को भी महानता में बदलकर प्रस्तुत करने की कला में माहिर होती हैं, बालकिशन की मां की तरह। समय ने भारतीय ग्रामीण समाज को 'चाक' पर चढ़ा दिया है और 'चाक' पर चढ़कर गांव का समाज अनेक अनेक रूपों में ढलकर बदल रहा है। मैत्रेयी पुष्पा ने गांव के अन्तर्विरोधों और मूल्यगत संक्रमणों को बारीकी से पकड़ा है।

मन के धरातल पर ही नहीं तन के मोर्चं पर भी यह स्त्री कहीं अबला नहीं है। चूल्हा चौका से लेकर ढोर–बाखरी, खेत–खलिहान, बच्चे जनना, उन्हें पालना, सबकी सेवा–टहल, किसानी–मजदूरी जीवन के किसी मोर्चे पर ना वह पीछे हटती है, ना ही टूटती है। 'मन्दाकिनी' अपनी इच्छा शक्ति के बल पर गांव के लोगों को संगठित कर शोषक वर्ग को मुंह तोड़ जवाब देती है। मंदा की इस आंतरिक दृढता के कारण ही राजकिशोर ने गांव में मंदा की स्थिति को दक्षिण अफ्रीका में युवा गांधी की स्थिति के समतुल्य माना है।''[8] साहित्य में लोक जीवन की जिस धारा को हाशिए पर डाल दिया गया था उसकी अनेक परतों को खोलकर मैत्रेयी पुष्पा स्तब्ध कर देती हैं। ग्रामीण समाज की स्त्रियां सक्रिय, ऊर्जावान और हलचल से भरी हैं। वे निस्तेज, निष्क्रिय, ठंडी और खामोश नहीं हैं। 'इदन्नमम' से लेकर अब तक मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएं अपने भाग्य को कोसने या रोने

बिसूरने वाली 'भारतीय नारी' की छवि को लगातार तोड़ रही हैं। बुन्देलखण्डी ओर ब्रज समाज के ग्रामीण नायक नायिकाओं को सामने लाकर और लोकगीतों, लोकसंस्कृतियों की छटा का भरपूर वर्णन करके मैत्रेयी पुष्पा ने स्वयं को ग्रामीण समाज की लेखिका के रूप में स्थापित किया है। जीवन के कई दशक देश की राजधानी में बिताने के बावजूद न उनका गांव से सम्पर्क टूटा है ना गांव से जुड़ी स्मृतियों पर समय ने कोई परत चढ़ाई है। मनीषा का यह कथन सटीकता से मैत्रेयी पुष्पा की स्थिति को दर्शाता है– ''संबंधों की जटिलता और पारदर्शिता के अनूठेपन को बखूबी संभालना हो या परम्पराओं, रूढ़ियों को पछाड़ना, निर्णय लेने में उनको खास दिक्कत नहीं होती। वे अच्छी तरह जानती है कि वे क्या कर रही हैं, यही कारण है कि तमाम घरेलू विद्रोह के बावजूद आज भी वे पारम्परिक खांचे में फिट हैं। साहित्यिक कीचड़ धोने के लिए आज भी गांव की तरफ ही भागती हैं, और वहां से फिर तरोताजा होकर आ जाती हैं, नये प्रहार सहने।''9 मैत्रेयी पुष्पा ने नागरिक सभ्यता की चकाचौंध में खोये हुए समकालीन लेखन को अपनी कृतियों के माध्यम से ग्रामोन्मुख बनाने का प्रयास किया है। लिंग विषमता में विकटता से जकड़े समाज की जड़ता को तोड़कर इसे समरसता और सहअस्तित्व की ओर अग्रसर करना मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री विमर्श और स्त्री केन्द्रित साहित्य का उद्देश्य है।

सन्दर्भ

1. 'समय माजरा' – नवम्बर 2013, सं. ऋतुराज, नवल किशोर, रमेश रावत, जयपुर– 'सत्ता के आगे सैक्स भी कुछ नहीं'– रूबरू– हेतु भरद्वाज द्वारा मैत्रेयी पुष्पा का साक्षात्कार, पृ.सं. 21
2. 'सृजन पथ'– सं. रंजना श्रीवास्तव, सिलीगुड़ी (प. बंगाल) 'मैं जोने की आदत को जीना नहीं मानती'– रंजना श्रीवास्तव द्वारा मैत्रेयी पुष्पा का साक्षात्कार, पृ. सं. 16
3. ''अनभैः'– अक्टूबर – दिसम्बर 2004, सं. रतन कुमार पाण्डेय, मुंबई, मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में ग्रामीण चेतना'– पृ.सं. 70
4. 'चॉक' – मैत्रेयी पुष्पा – पृ.सं. 19
5. 'हंस' – माच 2001 – पृ.सं. 09
6. 'गुडिया भीतर गुडिया ' – मैत्रेयी पुष्पा – पृ.सं. 323
7. 'चॉक' – मैत्रेयी पुष्पा – पृ.सं. 322
8. 'चाणक्य विचार ' – सं. दीपा दीक्षित, लखनऊ, मई 2009 – पृ.सं. 09
9. वही – मई 2009 – पृ.सं. 26

मूल ग्रन्थ

1. मैत्रेयी पुष्पा– 'इदन्नमम' – किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, 2006
2. मैत्रेयी पुष्पा– 'चॉक' – राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2006
3. मैत्रेयी पुष्पा– 'झूलानट'– राजकमल पेपर बॉक्स, नई दिल्ली, 2004
4. मैत्रेयी पुष्पा – 'अल्मा कबूतरी'– राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2007
5. मैत्रेयी पुष्पा – 'अगन पाखी'– राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2003
6. मैत्रेयो पुष्पा – 'कही इसूरी फाग'– राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2006
7. मैत्रेयी पुष्पा – 'कस्तूरी कुण्डल बसै'– राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2003
8. मैत्रेयी पुष्पा – 'गुड़िया भीतर गुड़िया' – राजकमल पेपर बाक्स, नई दिल्ली, 2005